विराट नगरका एक अज्ञात टीकाकार—वाडव

—श्री महोपाध्याय विनयसागर

जैन श्वेताम्बर उपासक वर्ग के इने-गिने साहित्यकार-कवि पद्मानन्य ठक्कुर फैरू, मन्त्री मण्डन, मन्त्री धनद आदि के साथ टीकाकार वाडव का नाम भी गौरव के साथ लिया जा सकता है। वाडव जैन श्वेताम्बर अचलगच्छीय उपासक श्रावक था। वह विराट नगर वर्तमान बैराड (अलवर के पास, राजस्थान प्रदेश) का निवासी था। संस्कृत साहित्य-शास्त्र और जैन-साहित्य का प्रौढ विद्वान् एवं सफल टीकाकार था। इसका समय वैक्रमीय पन्द्रहवीं शती का उत्तरार्द्ध है। इसने अनेक ग्रन्थों पर टीकायें लिखी थीं किन्तु दुःख है कि आज न तो उसका कोई ग्रन्थ ही प्राप्त है और न जैन इतिहास या विद्वानों में उल्लेख ही प्राप्त है। वाडव की एकमात्र अपूर्ण कृति 'वृत्तरत्नाकर अवचूरि' (१५ वीं शती के अन्तिम चरण की लिखी) मेरे निजी संग्रह में है। इसकी प्रशस्ति के अनुसार वाडव ने जिन-जिन ग्रन्थों पर टीकायें लिखी हैं, उसके नाम उसने इस प्रकार दिये हैं :—

(१) कुमारसम्भव काव्य अवचूरि
(२) मेघदूत काव्य अवचूरि
(३) रघुवंश काव्य अवचूरि
(४) माघ काव्य अवचूरि
(५) किरातार्जुनीय काव्य अवचूरि
(६) कल्याण मन्दिर स्तोत्र अवचूरि
(७) भक्तामर स्तोत्र अवचूरि
(८) जचइनवनलिन तृतीयस्मरणं अवचूरि
(९) 'वामेय' पार्श्वस्तोत्र अवचूरि
(१०) प्रभुं जीरिका, स्तोत्र अवचूरि
(११) सकलसुखनामक स्तोत्र (नवम स्मरणं) अवचूरि
(१२) त्रिपुरा स्तोत्र अवचूरि
(१३) वृत्तरत्नाकर अवचूरि
(१४) वाग्भट्टालंकार अवचूरि
(१५) विदग्धमुखमण्डन अवचूरि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१६) योगशास्त्र (४ अध्याय) अवचूरि
(१७) वीतराग स्तोत्र अवचूरि

पूर्ण प्रशस्ति इस प्रकार है :—

प्रथमं कुमारसम्भव इति तस्मान्मेघदूतकः पुरतः।
रघुनाथचरितपूतो रघुवंशः कालिदासकृतिः ॥ १ ॥

अयं को माघः अयंकः किरातकाव्यं महागभीरार्थम्।
ज्ञेयानि च पञ्च महाकाव्यान्यैतानि लौकिकान्यत्र ॥ २ ॥

कल्याणमन्दिराख्यः श्रीमान्भक्तामरः स्तवकः।
जयईनवनलिनकुवलयमहिमागारस्य जिनपतेः स्तवकः ॥ ३ ॥

श्री वामेयञ्च प्रभुं जीरिकया संयुतं परं स्तवनम्।
श्रीमत्सकलसुखाख्यं त्रिपुरास्तोत्रं लघुस्तवकम् ॥ ४ ॥

केदार-रचितं छन्दो वृत्तरत्नाकराभिधम्।
अलंकारः कविश्लाघ्यः श्रीवाग्भटकविकृतेः ॥ ५ ॥

श्रीधर्मदासरचिता विदग्धमुखमण्डनः।
आद्याः श्रीयोगशास्त्रस्य चत्वारोऽध्यायकवराः।
श्रीवीतरागदेवस्य स्तवनानि च विंशतिः ॥ ६ ॥

श्रीमदञ्चलगच्छाख्ये जयशेखरसूरयः।
बभूवुर्भूपतिश्रेणीवन्दितांघ्रियुगाः सदा ॥ ७ ॥

शिष्याश्च तेषां वसुधेशदत्त-मानाः परेषामुपकारदक्षाः।
श्रीवाचनाचार्यपदप्रपन्नाः श्रीमेरुचन्द्रप्रवरा जयन्ति ॥ ८ ॥

अतिविकट-यवनभूपति-कारागेहस्थसंस्थिता यतयः।
यैरुद्धृता जयन्तु प्रसमं श्रीमेरुचन्द्राख्याः ॥ ९ ॥

श्रीमतां मेरुचन्द्राणामादेशात् वाडवेन च।
पूर्वोक्त-ग्रन्थ-सङ्घानामवचूरिः कृतापरा ॥१०॥

विराटनगरस्थेन मन्त्रिपञ्चाननेन च।
श्रीमन्माणिक्यसुन्दर,सूरिभिः शोधिता दृढम् ॥११॥

सारांश—

अंचलगच्छ में अनेक भूपतियों से वन्दित **श्री जयशेखरसूरि** हुए। उनके शिष्य **वाचनाचार्य मेरुचन्द्र** विद्यमान हैं, जिनको राजाओं ने मान दिया है, जो उपकार करने में दक्ष हैं और जिन्होंने भयंकर **यवनराजा के**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कारागार में रहे हुए यतियों का उद्धार किया है, जेल से छुड़ाया है। ऐसे श्री मेरुचन्द्र वाचनाचार्य के आदेश से वाडव ने (मैंने) पूर्वोक्त १७ ग्रन्थों पर अवचूरि (लघुटीका) की रचना की है। इन अवचूरियों का संशोधन विराटनगर निवासी मन्त्री पंचानन और श्री माणिक्यसुन्दरसूरि ने किया है।

इस प्रशस्ति से कई नवीन तथ्य प्रकाश में आते हैं जिन पर विचार किया जाना आवश्यक है।

(१) पार्श्वलिखित 'अंचलगच्छीय दिग्दर्शन' के अनुसार जयशेखरसूरि का समय लगभग १४०० से १४६२ का है। ये महेन्द्रप्रभसूरि के द्वितीय शिष्य हैं। महेन्द्रप्रभसूरि के पाट पर मेरुतुंगसूरि बैठे। इसलिये मुख्य पट्ट-परम्परा में जयशेखरसूरि नहीं आते यही कारण है कि जयशेखरसूरिके शिष्य वाचनाचार्य मेरुचन्द्र का इस इतिहास में नामोल्लेख भी प्राप्त नहीं होता। जयशेखरसूरि के शिष्य होने से मेरुचन्द्र का समय १४२० से १५०० के मध्य का निश्चित रूप से माना जा सकता है।

(२) जयशेखरसूरि के लिये 'बभूवुः' शब्द का प्रयोग होने से वाडव का रचना काल १४६५ से १५०० के मध्य का माना जा सकता है।

(३) मेरुचन्द्र ने यवनभूपति को प्रतिबोध देकर कारागारमें रहे हुये यतियों को छुड़ाया। यह एक नवीन तथ्य है। वह यवनभूपति कौन था? कहां का था? और उसने किस कारण से यतियों को जेल में डाला था? आदि प्रश्नों पर, प्रशस्ति में नाम और स्थान का उल्लेख न होनेसे कोई प्रकाश नहीं पड़ता है। इतिहास के शोधविद्वानों का कर्त्तव्य है कि इसपर शोध करके प्रकाश डालें।

(४) इन टीकाओं के संशोधकों में वाडव ने दो नाम दिये हैं :—(१) श्रीमाणिक्यसुन्दरसूरि और (२) विराटनगरीय मन्त्री पंचानन।

श्री माणिक्यसुन्दरसूरि का समय लगभग १४३५ से १५०० के मध्य का है। ये संस्कृत के मूर्धन्य विद्वान् रहे हैं और गुजराती भाषा के प्राचीन लेखकों में इनका महत्वपूर्ण स्थान है। इनकी दो कृतियां श्रीधरचरित्र महाकाव्य (१४८५) और गुणवर्माचरित्र (१४८५) राजस्थान प्रदेश में ही रचित है। इनके विशेष परिचय के लिये 'अंचलगच्छीय दिग्दर्शन' द्रष्टव्य है।

(५) विराट का इतिहास प्रकाशित न होने से मन्त्री पंचानन के सम्बन्ध में प्रकाश डालना सम्भव नहीं है किन्तु इतना निश्चित है कि पंचानन संस्कृत काव्य, लक्षण-शास्त्र का धुरन्धर विद्वान् था। जैन था और विराट नगर का मंत्री भी।

(६) यहां एक प्रश्न विद्वानों के लिये अवश्य ही विचारणीय है कि 'मन्त्रिपन्चाननैन च' शब्द स्वतन्त्र व्यक्तित्व का सूचक है या टीकाकार वाडव का विशेषण? यदि स्वतन्त्र व्यक्तित्व का सूचक है तबतो पूर्वोक्त अर्थ ठीक ही है कि विराटनगरीय मन्त्री पंचानन ने इस समस्त टीका ग्रन्थों का संशोधन किया। और यदि इस शब्द को वाडव का विशेषण मानें तो, मन्त्रियों में पंचानन अर्थात् सिंह के समान, वाडव ने इन ग्रन्थों पर अवचूरियां

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

की हैं, यह अर्थ भी ग्रहण किया जा सकता है। इस अर्थके आलोक में वाडव को ही विराटनगर का मंत्री मान सकते हैं। इस प्रश्न पर निर्णय करना विद्वच्छ्रेष्टोंका कार्य है।

इस उहापोह से यह तो स्पष्ट है कि विराटनगरीय वाडव का समय १५ वीं शती का उत्तरार्द्ध है। वाडव जैन है, विद्वान् है। और उस समय (१५ वीं शती) विराटनगर में अंचलगच्छीय श्वेताम्बर जैनों का प्रभाव था, बाहुल्य था, मंत्री भी जैन श्रावक था।

वाडव की अन्य कृतियां जो अप्राप्त हैं उनके लिये शोध विद्वानों का कर्त्तव्य है कि खोज करके अन्य ग्रन्थों को प्राप्त करें और वाडव के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर विशेष प्रकाश डालें।

❀ ❀ ❀

से जाणमजाणं वा, कट्टु आहम्मिअं पयं।
संवरे खिप्पमप्पाणं, बीयं तं न समायरे॥

जानकारी में अथवा अनजान में कोई अधर्म कार्य हो जाय तो स्वयं की आत्मा को उसमें से तुरन्त हटा लेना चाहिए। फिर दुबारा उस कार्य को नहीं करना चाहिए।

संगनिमित्तं मारइ, भणइ अलीअं करेइ चोरिक्कं।
सेवई मेहुण मुच्छं, अप्परिमाणं कुणइ जीवो॥

परिग्रह के कारण जीव हिंसा करता है, असत्य बोलता है, चोरी करता है, वासनामय बनता है और अत्यधिक आसक्ति करता है। इस प्रकार परिग्रह पांचों पाप-कर्मों की जड़ है।

गंथच्चाओ इंदिय-णिवारणे अंकुसो व हत्थिस्स।
णयरस्स गाइया वि य, इंदियगुत्ती असंगत्तं॥

जिस प्रकार हाथी को वश में करने के लिए अंकुश होता है और शहर की रक्षा के लिए खाई होती है, उसी तरह इन्द्रिय-निवारण के लिए परिग्रह का त्याग (कहा जाता) है। परिग्रह-त्याग से इन्द्रियाँ वश में रहती हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org